(कवित्त)

आसा-गुन बाँधि के भरोसो-सिल धरि छाती
पूरे पन-सिंधु में न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि अंतर उदेग-आँच
रोम-रोम त्रासनि निरंतर तचायहौं।
लाख-लाख भाँतिन को दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे ज्यौं चलायहौं।
ऐसें घनआनँद गहो है टेक मन माहिं
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ।। २३ ।।

प्रकरण—किसी अत्यंत निर्दय के हृदय में भी दया उत्पन्न हो सकती है कि उसका कोई, जिससे वह उदास हो, उसकी आँखों के सामने ही डूब मरने का उपक्रम करे। यहाँ प्रेमी उसी उपक्रम की चर्चा कर रहा है और इस दृढ़ विश्वास से कि निर्दय प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न होकर रहेगी। प्रेमी बतलाना चाहता है कि प्रेम में शारीरिक अथवा मानसिक यंत्रणा का भय बिलकुल नहीं रहता।

चूर्णिका—आसा-गुन = आशा रूपी रस्सी। आसा० = आशा की रस्सी में अपने को बाँधकर, आशा लगाए रहकर। सिल = (शिला) पत्थर। भरोसो० = भरोसा रूपी पत्थर छाती पर रखकर (हृदय कठोर कर); उसका भरोसा किए रहकर। पूरे = पूर्ण। पन-सिंधु = प्रेम की प्रतिज्ञा के समुद्र में। न सकायहौं = शंकित न होऊँगी, डरूँगी नहीं। दुख-दव = दुःख की दावाग्नि है। उदेग = उद्वेग, व्याकुलता। अंतर = भीतर होनेवाले उद्वेग की आँच में। रोम-रोम = रोआँ-रोआँ, सारा शरीर। त्रासनि = पीड़ाओं से। निरंतर = लगातार। तचायहौं = तपाऊँगी। भाँति = प्रकार। जानि = जानकर, जानते-बूझते हुए। साहस सहारि = साहसपूर्वक सँभालकर। सिर० = सिर पर आरे की भाँति (उन दशाओं को) चलवाऊँगी। उन दुस्सह दशाओं को अत्यंत कष्ट होते हुए भी सहूँगी। ऐसे = इस प्रकार (से)।

तिलक—ऐ निर्दय प्रिय, अब तो मैंने मन में यह टेक इस प्रकार से धारण कर ली है कि जैसे हो तुझमें दया उपजाकर रहूँगी। सबसे पहले तो मैं समुद्र में डूबूँगी। साधारण रूप में नहीं छाती पर पत्थर रखकर और उस पत्थर को अपने से रस्सी द्वारा बाँधकर जिससे जल से निकालने की संभावना देखनेवाले को न हो। भरोसा-रूपी पत्थर अपनी छाती पर रखकर आशा की रस्सी से उसे बाँधूँगी और निःशंकपन के समुद्र में डूबूँगी। आपकी आशा लगाए ही रहूँगी, आपका भरोसा किए ही रहूँगी और अपने पूर्ण पन के निबाहने में निःशंक तत्पर रहूँगी, चाहे आप आएँ या न आएँ, चाहे आपसे प्रेम पाने की संभावना हो या न हो और चाहे आप मेरे कष्ट से व्यथित हों चाहे न हों। पानी में डूबने से आग में जलना-भुनना अधिक कष्टकर है। इसलिए यदि आप डूब मरने के प्रयास से आकृष्ट न होंगे तो मैं दुःख की दावाग्नि से हृदय को जलाऊँगी। जिस दावाग्नि से मेरे अंतःकरण में उद्वेग की भीषण आँच उत्पन्न होगी उस आँच से शरीर के अंग ही नहीं रोएँ-रोएँ को तपाऊँगी और निरंतर तपाऊँगी। प्रिय के वियोग के कारण हृदय के भीतर उद्वेग, दुःख और वेदना बराबर होगी। इस प्रकार की कष्टसाधना से प्रिय के प्रभावित होने की संभावना है। डूबने से जलने में अधिक कष्ट है और जलने से भी अधिक कष्ट है आरे से सिर चिरवाने में। अनेक प्रकार की कठिनाई से सही जा सकनेवाली विरह की दशाओं को इस प्रकार जानते-बूझते साहस बटोरकर सिर पर आरे की भाँति चलवाऊँगी। विरह की विविध प्रकार की आकुलता का प्रदर्शन न करूँगी। भीतर ही भीतर रहूँगी।

व्याख्या—आसा-गु०० = यदि कोई शव डुबोया जाता है, जैसे संन्यासियों का या जिनका प्रवाह करना ही विहित है, तो उसे पत्थर पर रखकर रस्सी से बांध देते हैं। जिससे वह फूलकर हलका होकर पत्थर के दबाव के कारण ऊपर न आ सके। यदि किसी को जीते जी डुबोकर मारना हो तो भी यही प्रक्रिया करनी पड़ेगी। कोई स्वयम् आत्महत्या करना चाहे तो भी डूबकर ऐसे ही मर सकेगा। पत्थर यदि न बांधा जाय तो वह उतरा जाएगा। आशा का बंधन बहुत कड़ा होता है। डूबकर मरनेवाले की रस्सी पत्थर से सुदृढ न बँधी हो तो उसके खुलकर ऊपर आ जाने की संभावना रहती है। उसमें कई फेरे देकर और ठीक गाँठ लगाकर डुबोते हैं। आशा दृढ होती है। रस्सी भी

दृढ़ चाहिए, पुरानी रस्सी या कमजोर रस्सी बेकार होती है। 'आशा बलवती राजन् अल्पो जेष्यति पाण्डवान्' बहुत प्रसिद्ध है। भरोसो-सिल = भरोसे में बोझ होता है। जो किसी बात का भरोसा रखता है वह दबा रहता है। उस भरोसे के कारण वह कितने ही ऐसे कार्य नहीं करता जिन्हें भरोसा न होने पर अवश्य करता। वह भरोसा उसे रोकता रहता है। 'भरोसा' में भर 'भार' ही है। भरोसा का अर्थ 'भार से दबना' हो है। कदाचित् 'भारोपित' से 'भरोसा' हो। धरि छाती = छाती पर पत्थर बाँधने से शीघ्र छूटने की संभावना नहीं। भरोसे का प्रभाव छाती अर्थात् हृदय पर बहुत पड़ता है। कार्य में प्रवर्तक हृदय ही होता है। उसे दबाने की या उसके दबने की विशेष अपेक्षा रहती है। पूरे पन सिंधु = एक तो किसी के डूबने के लिए पानी अधिक चाहिए। समुद्र भी महासागर हो तो अगाध जल। कोई खड़ो हो, तो कम जल सिंधु से भी होगा। 'पन' भी पूरा होना चाहिए। अधूरे पन में तो बीच में पराङ्मुख होने या छोड़ बैठने की संभावना रहती है। न बूड़न० = इतने पर भी यदि डूब मरने के लिए जो स्वयम् तत्पर हो उसमें शंका, घबराहट, हिचकिचाहट हो सकती है, पर विरही में वह भी नहीं। घबराहट होने से वह स्वयम् तो डूबेगा ही क्या, कोई अपने को स्वयम् बाँधकर डूबो नहीं सकता। बाँधने और डुबानेवाले की आवश्यकता पड़ती है। यदि डूबनेवाला हो हिचकिचाया तो फिर डुबोनेवाले को क्या पड़ी है। विरही साइस-पूर्वक संबद्ध है। डुबदद० = डूबने से जलने में अधिक कष्ट इसलिए है कि जल में डूबनेवाला पानी पी जाता है और हृदय का चलना बंद हो जाता है। मरने के पूर्व इतनी मात्रा में पानी का शरीर में पहुँच जाना पर्याप्त है कि श्वासावरोध हो और हृद्गति का संचालन बंद हो जाए। बस। शरीर में और कोई विशेष वेदना नहीं होती। यह कार्य भी शीघ्र हो जाता है। पर जलने में देर लगती है। बहुत जल्द जलनेवाला कपूर भी डूब मरनेवाले से देर तक जलता रहता है, फिर जलने में यह भी बाधा है कि एक अंग के जलने पर भी कोई जीता रह सकता है। एक अंग के जलने में देर लगती है सारे अंग रोएँ-रोएँ को जला देने में अधिक समय लगने से इसमें वेदना अधिक होती है। डूबने पर यदि तुरंत निकालकर उपचार करते हैं तो फिर जीने की संभावना भी है, पर जब सब अंग जल गए तो जीने की संभावना ही नहीं रह जाती। जहाँ धीरे-

धीरे बराबर जलना हो वहाँ राख भर रह जाएगी। आशा-भरोसा जिलाने-वाले होते हैं। रस्सी और पत्थर से बाँध देने पर भी कोई जीता रह सकता है। साँस लेता रह सकता है। पर जब पानी में वह पड़ेगा तब डूबेगा। पर दुःख अर्थात् चिंता तो ऐसी आग है कि वह भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। गिरिधर कविराय ने लिखा है--

चिंता ज्वाल सरीर बन दाहा लगि लगि जाइ।
प्रकट धुआँ नहिं देखियै उरअंतर धुधुआइ।
उरअंतर धुधुआइ जरै जस काँच की भट्टी।
हाड़-माँस जरि जाइ रहै बस केवल ठट्टी।
कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे मिता।
वे नर कैसे जियैं जासु उर व्यापी चिंता॥

निरंतर = आग यदि सुलगे तो धीमी न पड़े, यदि धीमी पड़े तो उसे प्रज्वलित करते रहने के लिए निरंतरता अपेक्षित है। रोम रोम = प्रत्येक रोएँ को अर्थात् शरीर के प्रत्येक अंश को छोटे से छोटे अंश तक को। त्रासनि = त्रास कई प्रकार के—बड़ों का, जाति का, कुल का त्रास। त्रास को रूपक में प्रस्तुत ही रखा गया। इसका अप्रस्तुत नहीं है। निरंतर ताप यही त्रास है। अथवा कोई जलना नहीं चाहता तो उसे डरा-धमकाकर जलाते ही हैं। तचाना = तपाना, परेशान करना। लाख० = आरे में बहुत से दाँते होते हैं इस आरे में लाखों दाँते ही दाँते हैं, दशाएँ विरह की। आरा क्या है इन्हीं दशाओं से बना विरह का आरा। दुसह = दशाएँ दुस्सह हैं, असह्य नहीं। असह्य तो सही ही नहीं जाएँगी। जानि = जानते बूझते आरे से सिर चिरवाना अधिक कष्ट का विषय है जलने से भी। मयूरध्वज ने आरे से अपने को चिरवाया था। कहते हैं कि आरे से चिरवाते समय उसकी आँख में आँसू आ गए। पूछने पर उसने कहा कि आरे की पीड़ा के कारण ये आँसू नहीं आए हैं। दाहिना अंग बाएँ से बिछुड़ रहा है इस वियोगजन्य कष्ट से दोनो भाग एक दूसरे के लिए रो रहे हैं। सीधे स्वर्ग जाने के कई अत्यन्त संतापदायक प्रयोग प्राचीन काल में चलते थे। कंडे की आग में, तुषानल में, त्रिशूल पर कूदकर, पहाड़ से कूदकर प्राण देना आदि। इसी में आरे से सिर चिरवाना भी है। काशी में करवत (करपत्र—आरा) लेने की चर्चा जायसी की पदमावत और सूरदास के भ्रमरगीत में है। 'काशी करवट' नाम का एक स्थान ही काशी